Chapter- 3

अध्याय-3

मध्यकाल : अनुवाद के झरोखे से

3.1 मध्यकाल और अनुवाद

3.1.1 तुलसीदास : एक अनुवादक

3.1.2 रहीम : एक अनुवादक

3.1.3 मल्ह कवि : एक अनुवादक

अध्याय-3
मध्यकाल : अनुवाद के झरोखे से

3.1 मध्यकाल और अनुवाद :

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल आदिकाल के अंतिम काल से शुरु होता है । अनेक विद्वानों ने इस मध्यकाल को दो हिस्सों में विभाजित किया है : एक पूर्वमध्यकाल जिसे भक्तिकाल के नाम से भी जानते हैं और दूसरा उत्तर मध्यकाल जिसे रीतिकाल के नाम से जाना जाता है । डॉ. नगेन्द्र ने मध्यकाल का समयान्तराल 1500 ई. से 1800 ई. तक माना है ।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसकी समयावधि 1318 ई. से 1843 ई. तक मानते हैं ।[2]

3.1.1 पूर्वमध्यकाल और अनुवाद :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने पूर्व मध्यकाल का निर्धारण 1318 से 1643 ई. तक किया है तथा इसे भक्तिकाल के नाम से अभिहित किया है ।[3] जबकि डॉ. नगेन्द्र इसका समर्थन करते हुए मानते हैं कि भक्तिकाल 14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक प्रवृत्त था ।[4]

पूर्वमध्यकालीन राजनीतिक स्थिति पर दृष्टिपात करें तो इस काल का आरंभ दिल्ली के सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1351) के राज्यकाल में हुआ । मुहम्मद बिन तुगलक हिन्दू प्रजा के प्रति उदारमना और विद्वान कवि था, परंतु उसके उत्तराधिकारी पक्षपाती और धार्मिक सहिष्णुता से रहित थे । परिणामस्वरूप सूबेदारों ने विद्रोह कर दिया और 1412 ई. में तुगलक वंश का आधिपत्य समाप्त हो गया । उसके बाद भी 1643 ई. तक की अवधि में दो प्रमुख मुस्लिम वंशों - पठान वंश और मुगल वंश का आधिपत्य बना रहा । फिर भी दैनिक जीवन, रीति रस्म, रहन सहन, पर्व त्यौहार आदि की दृष्टि से तत्कालीन भारतीय समाज सुविधा सम्पन्न और असुविधाग्रस्त इन दो वर्गों में बँटा हुआ था । हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही समाज अपने-अपने पक्ष के महारथी थे । इनमें से हिन्दू समाजशास्त्रों का समर्थक तथा परंपरागत विश्वासों

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.14
2. वही, पृ.88, 278
3. हिन्दी साहित्य का प्रश्नात्मक इतिहास, जयमूर्तिसिंह गौतम, पृ.21
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.89

तथा मान्यताओं को माननेवाला समाज था । परंतु मुस्लिम सत्ता का धीरे-धीरे विस्तार होने लगा । हिन्दू राजा हारते गए । मुस्लिमों की बार-बार लगातार विजय होने लगी । उनकी आक्रमणखोर सेनाओं ने सारे देश में आतंक मचा दिया । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार संवत 1300 के बाद हिन्दू शक्तियों का पूर्ण ह्रास होने लगा । बार-बार हार होने से हिन्दू राजा तथा प्रजा हतोत्साह होने लगे । आशाविहीन हिन्दू मुसलमानों के महाआतंक से त्रस्त हो चुके थे । इस प्रकार त्रस्त हिन्दूओं को अब ईश्वर के प्रति अपनी त्रस्तता जताने प्रार्थना करने के अलावा कोई चारा नहीं था । साथ ही साथ बौद्धों की गुह्य विद्या, तंत्र-मंत्र तथा नाथपंथियों के हठयोग आदि का भी सामान्य जनता की परिस्थिति पर कोई भी सुखद असर नहीं हो रहा था । इसी बीच दक्षिण में से रामानुजाचार्य की, गुजरात से माध्वाचार्य की ब्रज से वल्लभाचार्य की एक साथ ही प्रेम और भक्ति की भावना राम और कृष्ण की श्रद्धा भक्ति के द्वारा ऐसी उमड़ पड़ी कि सारा देश इस भक्ति के प्रचण्ड प्रवाह में डूब गया ।

जयमूर्ति सिंह 'गौतम' तो यहाँ तक कहते हैं कि हिन्दू और मुसलमान सभी राम और कृष्ण के साकार रूप को ब्रह्म के रूप में अपनाने लगे ।[1]

पूर्वसंस्कार के साथ-साथ तत्कालीन भारतीय जनता में भक्ति के भाव जागृत हुए । भारत के तीन आचार्य - रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य और माध्वाचार्य के धर्म-संदेश, सिद्धान्त, धर्म प्रचार आदि का नामदेव, वल्लभाचार्य और रामानंद पर भारी असर हुआ ।

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में हिन्दी कविता में भक्ति का आरंभ 'नामदेव' से (1328 से संवत 1408) माना जाता है । नामदेव के बाद कबीरदास । कबीरदास के बाद मलिक मुहम्मद जायसी । उनके बाद तुलसीदास और सूरदास के नाम उल्लेखनीय हैं । फिर तो भक्ति साहित्य को नंददास, मीरा, रसखान, रैदास, मलूकदास, दादू, परमानंददास, छीत स्वामी, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी आदि ने अपने-अपने रंगों से रंगा है ।

भक्तिकाल के इस युग में भक्तिमार्ग के संदर्भ में विद्वानों ने कवियों की रचना के आधार पर भक्ति मार्ग की शाखाएँ निर्धारित की हैं । श्री जयमूर्ति सिंह 'गौतम' के अनुसार भक्ति मार्ग की दो शाखाएँ निर्गुण

1. हिन्दी साहित्य का प्रश्नात्मक इतिहास, जयमूर्तिसिंह गौतम, पृ.22

भक्ति धारा और सगुण भक्ति धारा हैं । निर्गुण भक्ति धारा की भी दो शाखाएँ (1) ज्ञानाश्रयी शाखा और (2) प्रेममार्गी शाखा हैं, जिनमें कबीर, रैदास, गुरुनानक, दादू, मलूकदास आदि ज्ञानाश्रयी शाखा के और मलिक मुहम्मद जायसी, कुतबन उसमान, शेखनबी आदि प्रेममार्गी शाखा के मुख्य कवि थे । जबकि सगुणधारा शाखा की भी दो उपशाखाएँ (1) रामभक्ति शाखा और (2) कृष्ण भक्तिशाखा हैं । रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवियों में गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास, हृदयदास आदि हैं तो कृष्णभक्ति शाखा के प्रमुख कवि श्री वल्लभाचार्य, सूरदास, नंददास (कृष्णदास), परमानंददास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी, हितहरिवंश, कुंभनदास, मीराबाई, रसखान आदि हैं ।[1]

साहित्य की दृष्टि से देखें तो भक्ति साहित्य पद्यमय है । काव्यमय है। अत: काव्यरसिकों या साहित्य-पारखियों का ध्यान यथावसर उन मानदंडों की ओर आकर्षित हो जाता है जिन्हें उत्कृष्ट काव्य की कसौटी मान लिया गया है और जो किसी न किसी काव्यशास्त्रीय परंपरा का अनुसरण करते हैं । डॉ. नगेन्द्र के अनुसार काव्यशास्त्रीय परंपरा का सूत्रपात ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दी में भरत के 'नाट्यशास्त्र' से हुआ था जबकि विभिन्न अभिनयों के संदर्भ में शृंगारादि रसों को महत्त्व प्रदान किया जाने लगा था । आगे चलकर क्रमश: भामह के अलंकारवाद, वामन के रीतिवाद, आनंदवर्द्धन के ध्वनिवाद, कुन्तक के वक्रोक्तिवाद और क्षेमेन्द्र के औचित्यवाद का प्रचार-प्रसार हुआ तथा काव्य परीक्षा करते समय इनके द्वारा निर्धारित नियमों की अनुरूपता को मानदंड स्वीकार कर लिया गया ।[2]

काव्यार्थ यहाँ तक ही सीमित न रहकर मूल तक पहुँचने लगा । काव्यार्थ कवि-कर्म है । 'कुङ', 'कवृ' द्वारा 'कवि' शब्द निर्मित है जिसका अर्थ 'वर्णनकरनेवाला' या 'जाननेवाला' होता है । अथर्ववेद (कांड 19, सूत्र 53, मंडल I) में इसका प्रयोग प्रज्ञावान या क्रांतदर्शी के अर्थ में किया गया है । ऋग्वेद (9/72/6) में भी 'मनीषिण: कवय:' का प्रयोग मिलता है । यजुर्वेद (40/8) में कवि शब्द का प्रयोग मनीषी और स्वयंभू तक के लिए हुआ है । श्रीमद्भगवदगीता (4/16) में कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय में कवियों में भी भ्रम पैदा होने का उल्लेख है :

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता: ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यतेऽशुभात ।।

1. हिन्दी साहित्य का प्रश्नात्मक इतिहास, जयमूर्तिसिंह गौतम, पृ.24
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.106

प्रश्नोपनिषद में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के आधार पर लोक विशेष की प्राप्ति की जानकारी कवियों द्वारा सुलभ बताई गई है । फिर भी ऐसे कवियों की कृतियों को कहीं भी 'काव्य' नहीं कहा गया है । श्रुति में परमात्मा की सृष्टि को 'देवस्य काव्यम्' अवश्य कहा गया है परंतु इसका सीधा अर्थ कविता का अर्थ संप्रेषित नहीं करता । कवि यदि अपनी क्रांतदर्शिता के कारण परोक्ष ज्ञान को भी प्रत्यक्ष कर दिखाने में सक्षम और समर्थ हो तो उसका काव्य आदर्श काव्य कहलाता है । इसी परंपरा का अनुसरण तथा तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक संबंध सूत्रों का परिणाम पूर्वमध्यकालीन कवियों पर पडा ।[1]

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार पूर्व मध्यकालीन भक्ति काव्य का आरंभ होने से पूर्व ही प्रांतीय भाषाएँ अपने-अपने अपभ्रंशों का अनुसरण करते हुए हिन्दी के समानान्तर साहित्यरचना में प्रवृत्त थीं । इन प्रांतीय भाषाओं में वण्य विषयों, काव्य रूपों और रचनाशैलियों की अनेक परंपराएँ प्रचलित थीं । लेकिन भक्तिकाव्य की रचना होते-होते इनमें नई-नई प्रवृत्तियाँ प्रविष्ट होने लगीं । सिद्धों, मुनियों, नाथों, सूफियों आदि की प्रचलित परंपराओं का विकास होने लगा । साहित्य निर्माण के नवीन रूप प्रकट होने लगे । इन प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने में मध्यदेशीय भाषा होने के कारण हिन्दी स्वभावतः आगे रही ।[2]

पूर्वमध्यकालीन भक्तिकाव्य विभिन्न प्रचलित परंपराओं से प्रभाव ग्रहण करके रचा जाने लगा । प्रांतीय भाषाओं से निकल कर भक्ति साहित्य हिन्दी भाषा में भी झलकने लगा । हिन्दी साहित्य में भक्ति का आरंभ नामदेव से माना जाता है । नामदेव के बाद भक्तिकाव्य का श्रीगणेश कबीरदास ने किया। कबीरदास की भक्ति राम और कृष्ण के साकार रूप के प्रति नहीं थी । वे भगवान को कभी अपने पिता तो कभी अपनी माता के रूप में देखते । कबीरदास की निर्गुण भक्ति में ही प्रेम का मार्ग लेकर मलिक मुहम्मद जायसी ने प्रेम भक्ति की धारा प्रवाहित की । इसमें फ़ारस के सूफ़ीमत तथा भारत की परंपरागत वेदों तथा उपनिषदों से गीता में होते हुए जो भक्ति, परंपरा से चली आ रही थी उसका बड़ी ही सफलतापूर्वक मिश्रण किया गया । परंतु भक्ति भावना का सच्चा और भारतीय स्वरूप सगुणभक्त तुलसीदास, सूरदास,

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.107
2. वही, पृ.110

मीराबाई आदि के काव्यों में ही मिलता है । इन्हीं रचनाकारों के कारण भक्तिकाल को साहित्य का स्वर्णकाल माना गया है । इसकाल में भक्ति काव्य अधिकांशतः संस्कृत-साहित्य की छाया को साथ लिए था । सगुण, निर्गुण, सगुण साकार, निर्गुण-निराकार की भक्ति मूलतः वेद, उपनिषद और गीता में विस्तृत रूप से देखने मिलती है । इसी कारण से हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में संस्कृत साहित्य का छायानुवाद अधिकांशतः दिखाई देता है ।[1]

पूर्वमध्यकालीन कवियों का अनुवादक रूप अधिकांशतः छिपा हुआ है । किसी भी कवि ने अपने अनूदित कृति को अनुवाद नहीं कहा है फिर भी तुलसीदास आदि जैसे रचनाकारों ने विभिन्न वेद पुराणों आदि से संदर्भ लिए हैं इस बात का स्वतः स्वीकार किया है ।

3.1.1 तुलसीदास : एक अनुवादक :

तुलसीदास के जन्म संवत् के बारे में विद्वानों में विविध मतमतांतर हैं। बेनी माधवदास प्रणीत 'मूल गोसाई चरित' तथा महात्मा रघुबरदास रचित 'तुलसी चरित' में तुलसीदास का जन्म संवत 1554 को हुआ ऐसा उल्लेख है । 'शिवसिंह सरोज' में इनका जन्म संवत 1583 माना है । पंडित रामगुलाम द्विवेदी ने जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 स्वीकार किया है । सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने भी संवत् 1589 को ही तुलसीदास का जन्म संवत् माना है ।[2] जन्म संवत् के बारे में तो विद्वानों में मतमतांन्तर है ही साथ ही साथ उनके जन्म स्थान के बारे में भी विद्वानों में भारी मतभेद हैं । 'मूल गोसाई चरित' और 'तुलसी चरित' में इनका जन्म स्थान राजापुर बताया गया है । शिवसिंह सेंगर और रामगुलाम द्विवेदी भी राजापुर को तुलसीदास का जन्मस्थान मानते हैं । जबकि रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. रामदत्त भारद्वाज, लाला सीताराम, गौरीशंकर द्विवेदी आदि सोरों को तुलसीदास का जन्म स्थान मानते हैं ।[3]

जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम तुलसी था । कहा जाता है कि अमुक्त मूल नक्षत्र में पैदा

---

1. हिन्दी साहित्य : अनुवाद के झरोखे से, अशोक वर्मा का अप्रकाशित लघुशोध प्रबंध, पृ.14
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.187-188
3. वही, पृ.188

होने के कारण इनके माता-पिता ने इन्हें बाल्यावस्था में ही त्याग दिया था। "मातृ पिता जग जाई तज्यो जनमि, करम बिनु विधिहु सृज्यो अवडरे" (विनयपत्रिका) आदि अंतः साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि तुलसीदास का बाल्यकाल अत्यंत विषम परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था। माता-पिता के छोड़ दिए जाने पर बाबा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया और ज्ञान-भक्ति की शिक्षा-दीक्षा भी दी। तुलसीदास का विवाह दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था। अत्यधिक आसक्ति के कारण जब एक बार इन्हें अपनी पत्नी से भर्त्सना मिली तब इनकी भावधारा सहसा लौकिक विषयों से विमुख होकर ईश्वर-प्रेम की ओर उन्मुख हो गई।[2] प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में कहा है कि तुलसीदास की पत्नी रत्नावली ने उनसे कहा -

"लाज न लागत आपको, दौरे आपऊ साथ, धिकधिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ। अस्थि चर्म मय देह मम, तामहँ जैसी प्रीति, ऐसी जौ हरिभजन महँ, होति न तौ भयभीति। इसी बात पर तुलसीदास विरक्त हो गए। और काशी में जाकर रहने लगे। वहाँ से अनेक तीर्थ स्थानों पर होते हुए रामेश्वर, द्वारिका, जगन्नाथपुरी आदि से चित्रकूट होते हुए अयोध्या में आकर रहने लगे। वहीं पर उन्होंने संवत् 1631 में 'रामचरितमानस' लिखना शुरू किया।[1]

विभिन्न सूत्रों से तुलसीदास विरचित अनेकों ग्रंथ प्राप्त हुए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके बारह ग्रंथों का उल्लेख किया है। बड़े ग्रंथों में - दोहावली, कवित्त, गीतावली, रामचरितमानस, रामायण, रामाज्ञा प्रश्नावली और विनयपत्रिका हैं जबकि छोटे ग्रंथों में वैराग्य संदीपनी कृष्णगीतावली, बरवै रामायण, जानकीमंगल, रामललानहछू और पार्वतीमंगल आदि हैं। 'शिवसिंह सरोज' में तुलसीदास विरचित दस और ग्रंथों का भी उल्लेख हैं - रोला रामायण, कड़खा रामायण, झूलना रामायण, कुंडलिया रामायण, छप्पय रामायण, रामसतसई, संकटमोचन, रामश्लाका, हनुमद बाहुक और छंदावली आदि।[2]

इस प्रकार अनेक ग्रंथों के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ने वेदों,

---

1. हिन्दी साहित्य का प्रश्नात्मक इतिहास, जयमूर्तिसिंह गौतम, पृ.44
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ.188

उपनिषद, गीता, पुराणों आदि को गंभीरतापूर्वक पढा-समझा और अपने मस्तिष्क में पूर्णरूपेण उतारा । कोई भी कृतिकार जब किसी कृति की सर्जना करता है तो उस पर पूर्व अनुभव तथा पूर्व ज्ञान का अधिकांश प्रभाव पड़ता है और उस कृति में जानबूझकर या फिर अनजाने में भी पूर्वानुभव, पूर्वज्ञान, भाव आदि का रूप झलकने लगता है । तुलसीदास ने भी कहीं-कहीं सायास और कहीं-कहीं अनायास ही अनुवाद कार्य किया है । डॉ. विद्या मिश्र के अनुसार - "गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में विविध राम-काव्यों की ही नहीं, बल्कि अन्यान्य काव्य ग्रंथों की सूक्तियों एवं मनोरम वाक्यावलियों को रत्न सम प्रभा प्रदान की है । कहीं अविकल अनुवाद के रूप में, कहीं भावानुवाद के रूप में, कहीं कथा-विस्तार के रूप में अन्य ग्रंथों से आधार लेकर रामचरितमानस की मौलिक प्रबन्ध योजना की है । इन ग्रंथों में आधार ग्रहण करते समय तुलसीदास ने जागरूकता का परिचय दिया है ।"[1]

रामनरेश त्रिपाठी का कहना है कि - "संस्कृत ग्रंथों में खोजने से 'रामचरितमानस' के बहुत-से दोहों, सोरठों, छंदों और चौपाइयों के मूल मिल जाएँगे । इनके अलावा संस्कृत के दो सौ से अधिक ग्रंथों के श्लोकों को भी चुन-चुनकर तुलसीदास ने उनका रूपान्तर करके रामचरितमानस में भर दिया है। कहीं-कहीं एक चौपाई के भाव किसी दूसरे पुराण के हैं और अन्य चौपाई में किसी नाटक या नीति ग्रंथ के भाव हैं । संस्कृत के दो-ढाई सौ ग्रंथों के लाखों श्लोकों पर उनका एक सम्राट की तरह अधिकार था ।"[2]

मूलतः देखा जाए तो रामचरितमानस की रचना में तुलसीदास स्वयं स्वीकार करते हुए कहते हैं कि इसकी रचना में मैंने विभिन्न पुराणों, आगमों, निगमों आदि से विचार लिए हैं । वे कहते हैं -

> **"नाना पुराण निगमागम सम्मतं**
> **रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।**
> **स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा-**
> **भाषा निबन्धमतिमञ्जुल मातनोति ।"[3]**

---

1. वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. विद्या मिश्र, पृ.43
2. तुलसी और उनका काव्य, रामनरेश त्रिपाठी, पृ.124
3. रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, बालकांड, श्लोक-7

तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना करते समय रूपान्तरण का भी अधिक उपयोग किया है । रूपान्तरण अर्थात् मूल विषय को परिवर्तन और परिवर्धन के साथ प्रस्तुत करना । मूल में थोड़ा-सा भी परिवर्तन किया जाए तो वह पूर्व प्रयुक्त होने के बावजूद नवीन भाव प्रकट करता है । तुलसीदास ने भी परंपरा से चली आ रही राम-कथा को फिर से कहा है । फिर भी इसे पढ़कर नवीन भाव उत्पन्न होते हैं । तुलसीदास ने किन-किन ग्रंथों से अनुवाद किया है इसकी लगभग बहत्तर ग्रंथों की सूची रामनरेश त्रिपाठी ने दी है जिसमें से कुछ प्रमुख ग्रंथों की सूची राजेन्द्रप्रसाद के अनुसार निम्नलिखित है :

श्रीमद्भागवत पुराण, गीता, अध्यात्म रामायण, अगस्त्य रामायण, अग्निवेश रामायण, आनंद रामायण, प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, उत्तर रामचरित, विष्णुपुराण, पद्मपुराण, सुभाषित-रत्न-भांडागार, मार्कण्डेयपुराण, मातृका विलास, रघुवंश, वसिष्ठ संहिता, गर्ग-संहिता, गालव संहिता आदि ।[1]

राजेन्द्र प्रसाद ने विविध आधार ग्रंथों को लेकर तुलसीदास कृत अनुवाद का परीक्षण किया है जो निम्नानुसार है :

तुलसीदास ने आनंद रामायण के अयोध्या कांड के एक श्लोक -

धृत्वा धैर्यं गृहः प्राह विषादं त्यज साम्प्रतम्
त्व सुमंत्र सदा विद्वान धैर्यंधर परार्थवित् ।

अयोध्याकांड पृष्ठ - 180

का अनुवाद रामचरितमानस में इस प्रकार किया है :

धीरज धरि तब कहहि निषादू ।
अब सुमंत्र परिहरहु विषादू ।
तुम पंडित परमारथ ज्ञाता ।
धरहु धीर लखि विमुख विधाता ।।

अयोध्याकांड 142-1-2

यहाँ मूल का भाव-विचार यथावत् अंतरित हुआ है । तुलसीदास ने कोई भी अंश नहीं छोड़ा है । 'धृत्वा' के लिए 'धरि' धैर्य के लिए धीरज, 'त्यज' के लिए 'परिहरहु', विषाद के लिए 'विषादू', 'परार्थवित्' के लिए 'परमारथ ज्ञाता' शब्द रखे हैं । वर्ण साम्य भी दिखाई देता है ।

आनंद रामायण के अयोध्याकांड के ही एक अन्य श्लोक -

---

1. काव्यानुवाद की समस्याएँ, संपादक - भोलानाथ तिवारी, महेन्द्र चतुर्वेदी, में राजेन्द्र प्रसाद का लेख 'तुलसी : अनुवादक के रूप में', पृ.127

सीतानुजयुतो रामो राजते पर्णमंदिरे ।

भक्तिज्ञान विरागश्च राजन्ते देहिनो यथा ॥

- अयोध्याकांड, पृष्ठ 345

का रामचरितमानस में तुलसीदास ने -

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर ।

भक्तिज्ञान वैराग्य जनु सोहत धरे शरीर ॥

यहाँ तुलसीदास ने आनंद रामायण की उक्ति को ज्यों का त्यों रख दिया है । यह सायास ही अनुवाद है । 'सीता' के लिए 'सीय', 'अनुज' के लिए 'अनुज', 'रामो' के लिए 'प्रमो', 'राजते' के लिए 'राजत', पर्णमंदिर के लिए 'परन कुटीर', 'भक्तिज्ञान' के लिए 'भक्तिज्ञान', 'विराग' के लिए 'वैराग्य', 'राजन्ते' के लिए 'सोहत', 'देहिनो' के लिए 'शरीर' यथा के लिए 'जनु' शब्द रखकर तुलसीदास ने प्रयासपूर्ण अनुवाद ही किया है ।

तुलसीदास ने वाल्मीकि रामायण के निम्नलिखित श्लोक का भावानुवाद किया है :

देशे-देशे कलत्राणि, देशे-देशे च बान्धवाः ।

तुंतु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥

वाल्मीकि रामायण 6.102.2

सुतवित नारि भवन परिवारा । होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।

अस विचार जिय जानहु ताता । मिलत न जगत सदोहद भ्राता ।

इसे बिम्ब-प्रतिबिम्ब अनुवाद भी कहा जा सकता है । ऐसा प्रतीत होता है मानों तुलसीदास की उक्ति वाल्मीकि की उक्ति का प्रतिबिम्ब हो ।

अध्यात्म रामायण:

संतामनः स्वच्छजलं पद्मकिंजल्कवासितम् ।

4.14

के इस श्लोक का तुलसीदास ने रामचरितमानस में **"संत हृदय जस निर्मल वारी"** किया है । यहाँ तुलसीदास ने उपमा को यथावत रखकर अपने शब्दों द्वारा अनुवाद कर्म किया है । 'संता' के लिए 'संत', 'मनः' के लिए 'हृदय', 'स्वच्छजलं' के लिए 'निर्मल वारी' शब्द रखे हैं ।

अध्यात्म रामायण के ही एक अन्य श्लोक -

तस्मिनकाले नाविकेन निषिद्धो रघुनन्दनः ॥
क्षाल्यामि तप पादपंकजं नायदारूदृषदोः किमन्तरम् ।
मानुषीकरण चूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रयीयसी ॥
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परतीरमहंनयामि ।
नौचेत्तरी साधुवती मलेन स्याच्चेद्धिमो विद्धि कुटुंबहानिः ।

अध्यात्मरामायण 1.6.2.-4

रामचरितमानस में यही बात तुलसीदास ने इस प्रकार कही है -

माँगी नाव न केवटु आना । कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहुं सब कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भई नारि सुहाई । पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि धरिनी होइ जाई । बाट परइ मोरिनाव उड़ाई ॥
येहि प्रतिपालउं सब परिवारू । नहिं जानौ कछु और कवारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गाचहहू । मोहि पर पदुम पखारन कहहू ॥

- रामचरितमानस 2.100.3-8

यहाँ तुलसीदास ने भावानुवाद किया है । तुलसीदास की सारग्रहण शक्ति एवं कवि प्रतिभा इन पंक्तियों से परिलक्षित होती है । उन्होंने 'मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रयीयसी' का विस्तार किया है -

चरनकमल रज कहुं सब कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई
छुअत सिला भई नारि सुहाई । पाहन तेन काठ कठिनाई ।

'चूर्णम्' के लिए 'मूर', 'कथा प्रयीयसी' के लिए 'कहुं सब कहई', 'मानुषीकरन' के लिए 'मानुष करनि' शब्द रखे हैं । 'पादाम्बुजं' के लिए 'पद पदुम' शब्द रखकर अनुवाद कर्म किया है।

श्रीमद् भागवतपुराण के श्लोक -

जिहुवासती दार्दुकेव सूत ।
न गोपगायत्यरु गाय गाथा ॥

2.3.20

का तुलसीदास ने शब्दानुवाद कर दिया है । यथा :

जौं नहिं करै राम गुन गाना ।
जीह सो दादुर जीह समान ॥

इसके अलावा यही बात आदि पुराण में भी कही गई है :

या वन्देन हरिनाम गुणं
सा प्रोच्यते विपुल दुर्दर जिह्वा ॥

8.28

शायद तुलसीदास ने इसी उक्ति को ज्यों का त्यों रख दिया है। श्रीमद्भागवतपुराण की उक्ति -

"बिलेवतोरूक्रमविक्रमान ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।"

अर्थात् जो मनुष्य भगवान श्रीकृष्ण की कथा नहीं सुनता, उसके कान साँप के बिल के समान हैं।

श्रीमद्भागवतपुराण की इस उक्ति का रामचरितमानस में तुलसीदास ने शब्दानुवाद किया है यथा:

जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना ।
श्रवन रंध्र अहि भवन समाना ॥

1.1.3.2

'ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य' के लिए तुलसीदास ने 'जिन्ह हरिकथा सुनी नहि काना' रखा है।

श्रीमद्भागवतपुराण की एक अन्य उक्ति -

भारः परं पट्ट किरीट जुष्ट -
मप्युत्तमांगं न नमेन्मुकुन्दम् ।

2.3.21

अर्थात् जो सिर कभी भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में झुकता नहीं, वह रेशमी वस्त्र से सुसज्जित और मुकुट से युक्त होने पर भी बोझा मात्र है। इस उक्ति का तुलसीदास ने रामचरितमानस में भावानुवाद और शब्दानुवाद दोनों ही किए हैं, यथा:

ते सिर कटु तंबुरि समतूला ।
जे न नमत हरि गुर पद भूला ।

यहाँ तुलसीदास ने उपमा बदल कर भावानुवाद और 'जे न नमत हरि गुर पद मूला' रख़कर शब्दानुवाद कर दिया है।

तुलसीदास ने गीता के भी अनेक श्लोकों का अनुवाद करके रामचरितमानस में उन विचारों को जड़ दिया है। यथा: गीता के सातवें अध्याय के एक श्लोक -

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोर्जुन ।
उदाराः सर्व एवैतु ज्ञानी त्वात्मैवमे मतम् ।।
ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा ।।

121.5-6

यहाँ तुलसीदास ने 'चतुर्विधा' के लिए 'चारिप्रकारा', 'सुकृति' के लिए 'सुकृति', सर्व एवैतु के लिए 'चारिउ', 'उदाराः के लिए उदारा' शब्द रखे हैं । गीता के ही अन्य श्लोक -

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।

4.7

अर्थात् "हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ क्योंकि साधु पुरूषों का उद्धार और दूषित कर्म करनेवालों का नाश करने के लिए तथा धर्म स्थापन करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ ।"

का रामचरितमानस में तुलसीदास ने श्लोक को उलट-पुलटकर भावानुवाद के साथ-साथ शब्दानुवाद भी किया है । यथाः

जब जब होइ धर्म की हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी
तब-तब हरि धरि विविध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा ।

1.120.6-8

यहाँ तुलसीदास ने प्रथम पंक्ति का शब्दानुवाद किया है -

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिभवति"
"जब जब होइ धर्म की हानी"

दूसरी पंक्ति में 'अभ्युत्थानम् धर्मस्य' का लोप कर दिया है साथ ही 'तदात्मानम्' का अनुवाद करना उन्होंने उचित नहीं समझा इसलिए इसे भी छोड़ दिया है । लेकिन इसका भाव उन्होंने 'संमवामि युगेयुगे' के साथ - 'तब-तब हरि धरि विविध सरीरा' कह कर जोड़ दिया है । 'परित्राणाय साधूनां' का शब्दानुवाद 'हरहिं सज्जन पीरा' किया है । गीता के इस अमर श्लोक को तुलसीदास ने जनभाषा में लाकर पुनः अमर बना दिया है ।

शिवपुराण में शिव-विवाह के बरातियों का वर्णन करते हुए एक श्लोक का तुलसीदास ने बिल्कुल ज्यों का त्यों शब्दानुवाद किया है । यथाः

अमुख विमुखाः केचित्केचिद् बहुमुखा गणाः ।
अकरा विकराः केचित्केचिद बहुकरा गणाः ।
अनेत्रा बहुनेत्राश्च विशिराः कुशिरास्तया ।
अकर्णा बहुकर्णाश्च नानावेश धरा गणाः ।।

2.3.43.54-5

शिवपुराण के इस श्लोक को तुलसीदास ने रामचरितमानस में इस तरह अनूदित किया है :

कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू ।
बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ।।
विपुल नयन कोउ नयन विहीना ।
रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना ।।

1.93.7-8

यहाँ पर तुलसीदास ने 'विशिराः कुशिरास्तया' तथा 'अकर्णा' बहुकर्णाश्च नानावेष धरा गणाः । के अनुवाद बजाय 'रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना' करके काम चला लिया है ।

शिवपुराण के ही एक अन्य श्लोक -

शृणु मद्रचनं देवि विश्वसिति चेन्मनः
तब रापमरीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया ।।
विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये ।
गत्वा तत्र स्थितस्तावद्धटे भव परीक्षिका ।।

2.2.24.43-44

का रामचरितमानस में तुलसीदास ने भावानुवाद किया है :

जौ तुम्हरें मन अति संदेह । तौ किन जाइ परीछा लेहू ।।
तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं । जब लग तुम्ह एहदु मोहि पाहीं ।।
जैसे जाई मोह भ्रम भारी । करेहू सो जतनु विवेक विचारी ।।

1.52.1-3

यहाँ तुलसीदास ने 'शृणु मद्वचनं देवि' का अनुवाद नहीं किया है । 'न विश्वसित चेन्मनः' के लिए 'जौ तुम्हरे मन अति संदेहू' रखा है । 'परीक्षा' के लिए 'परीछा' शब्द का प्रयोग किया है । तीसरी पंक्ति 'विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये' का शब्दानुवाद ही कर दिया है -

जैसे जाइ मोह भ्रम भारी ।

करेहु सो जतनु विवेक विचारी ॥

सुभाषित, रत्न, भांडागार के अनेकों सुभाषितों के अनुवाद तुलसीदास ने किए हैं । सुभाषित, रत्न, भांडागार के एक सुभाषित -

सज्जनस्य हृदय नवनीतं ।

यद्वदन्ति कवयस्तदलीकम् ॥

अन्य देह विलसत्परितापात् ।

सज्जनोद्रवति नो नवनीतम् ॥

का तुलसीदास ने सायास अनुवाद किया है :

संत हृदय नवनीत समाना ।

कहा कविन पै कहइ न जाना ॥

निजपरिताप दहै नवनीता ।

पर दु:ख द्रवहि सुसंत पुनीता ॥

तुलसीदास ने प्रथम पंक्ति का ज्यों का त्यों अनुवाद किया है । अगस्त्य रामायण के एक श्लोक :

यो जन: स्वच्छ हृदय: स

मां प्राप्नोति नापर: ।

मह्यं कपट दंमानि

न रोचन्ते कपीश्वर: ।

इसका तुलसीदास ने रामचरित मानस में ज्यों का त्यों अनुवाद कर दिया है :

निरमल मन जन सो मोहि पावा

मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

तुलसीदास ने 'अगस्त्य रामायण' की इस उक्ति को रामचरितमानस में इस प्रकार अनूदित किया है कि मानों उन्होंने अनुवाद करने की ठान ही रखी हो । उन्होंने 'यो जन: स्वच्छ हृदय: स' का अनुवाद निरमल मन जन सो' किया है । 'मां प्राप्नोति नापर:' के लिए उन्होंने 'मोहि पावा' अनुवाद किया है । 'कपट' शब्द ज्यों का त्यों ले लिया है । 'दंभानि' को छोड़कर कवि ने 'छल-छिद्र' कह दिया है । 'रोचन्ते' के लिए 'भावा' शब्द रख दिया है ।

तुलसीदास ने वामन पुराण से भावग्रहण करके रामचरितमानस में भावानुवाद कर प्रस्तुत किया है, यथा:

शरणागतं यस्त्यजति स
चाण्डालोऽधमो जनः ।

14.92

इसका भावानुवाद :

शरणागत कहूँ जे तजहिं
निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय,
तिन्हहिं विलोकत हानि ।।

यहाँ तुलसीदास ने वाग्विस्तार किया है । 'शरणागत' के लिए 'शरनागत' तथा 'यस्त्यजति स' के लिए 'जे तजहिं' ज्यों के त्यों ही ले लिए हैं। 'चाण्डाल' और 'अधम' के लिए 'पाँवर' और 'पापमय' का प्रयोग कर शेष अपनी ओर से जोड़ दिया है ।

प्रसन्न राघव के -

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासे स्वकीयैः ।
परमणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः ।

प्रथम अंक, पृ.7

का रामचरितमानस में तुलसीदास ने सायास ही अनुवाद कर्म किया है, यथा:

निज कवित्त केहि लाग न नीका ।
सरस होइ अथवा अति फीका ।।
जे पर भनित सुनत हरषाही ।
जे बर पुरुष बहुत जग नाहीं ।।

यहाँ 'अपि मुदमुपयान्तो' के लिए 'केहि लाग न नीका', 'वाग्विलासे' के लिए 'कवित्त' और 'स्वकीयै' के लिए 'निज' शब्द का प्रयोग किया है । 'परिभणितिषु' का 'पर मनित' रख्र दिया है । 'तोषं' के लिए 'हरषाही' शब्दानुवाद कर दिया है । 'यान्ति संतः कियन्तः' के स्थान पर 'ते वर पुरूष बहुत जग नाहीं' करके वाग्विस्तार किया है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के -

ब्राह्मणानांतु ह्दयं कोमलं नवनीतवत् ।

2.51.5

का उन्होंने शब्दानुवाद किया है :

संत हृदय नवनीत समाना ।

यहाँ तुलसीदास ने 'ब्राह्मण' के लिए 'संत' और 'कोमलं' को छोड़ दिया है । जबकि 'हृदय' शब्द के लिए 'हृदय' और 'नवनीत' शब्द के लिए 'नवनीत' ही रख दिया है ।

भविष्य पुराण के -

मूकं करोति वाचालं, पंगुं, लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानंदम् माधवम् ॥

1.1.3

इस श्लोक का तुलसीदास ने प्रयासपूर्वक शब्दानुवाद किया है :

मूक होइ वाचाल पंगु चढ़ै गिरिबर गहन ।
जासु कृपा सु दयालु द्रवौं सकल कलिमल दहन ।

यहाँ तुलसीदास ने 'मूकं' के लिए 'मूक', 'वाचालं' के लिए 'वाचाल', 'पंगु' के लिए 'पंगु' और 'यत्कृपा' के लिए 'जासु कृपा' रखकर सायास अनुवाद किया है । 'गहन' शब्द तुलसीदास ने अपनी ओर से जोड़ दिया है । 'लंघयते' के लिए 'चढ़ै' शब्द को रखा है । 'वंदे परमानन्दम् माधवम्' को उन्होंने बदल कर रखा है ।

हनुमन्नाटक की उक्ति -

पृथ्वि स्थिरा भव भुजंगम धारयैनां ।
त्वं कूर्मराज तदिदं द्वितीयं दधीयाः ॥
दिक्कुंजरा कुरूत त्रितये दिधीषां ।
रामः करोति हरकार्मुकमाततऽयम् ॥

1.29

का तुलसीदास ने रामचरितमानस में भावानुवाद किया है :

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला ।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकट धनु तोरा ।
होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥

यहाँ तुलसीदास ने कई शब्द ज्यों के त्यों रख दिए हैं । 'पृथ्वि स्थिरा' के लिए 'धरहु धरनि धरि धीर न डोला' रखा है । 'दिक्कुंजरा' के

लिए 'दिसी कुंजरहुं' कूर्मराज के लिए 'कमठ' शब्द का प्रयोग किया है ।
गालव संहिता के श्लोक -

मित्रस्य दुखेन जना
दुखिता नो भवन्ति ये ।
तेषां दर्शनमात्रेण
पातकं बहुलं भवेत् ।

का रामचरितमानस में तुलसीदास ने शब्दानुवाद किया है :

जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी ।
तिन्हहिं विलोकत पातक भारी ।।

'मित्रस्य' के लिए 'मित्र', दुखेन के लिए 'दुख', 'दुखिता' के लिए दुखारी, 'जना' के लिए 'जे', 'नो' के लिए 'न', 'तेषां' के लिए 'तिन्हहिं', 'दर्शनमात्रेण' के लिए 'विलोकत', पातकं के लिए 'पातक', 'बहुल' के लिए 'भारी' शब्द का प्रयोग करके सायास अनुवाद का परिचय दिया है ।
रघुवंश के -

वशीनां उधूणां मनः परस्त्री विमुख प्रवृत्ति ।।
अर्थात् "रघुवंशियों का मन पराई स्त्री की ओर नहीं जाता"
रघुवंश, सर्ग - 14

इस श्लोक का तुलसीदास ने भावानुवाद किया है :

"नहिं लावहिं पर तिय मन दीठी ।"

इस प्रकार अनेक ग्रंथों की सहायता से तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की है । रामचरितमानस की रचना करने से पूर्व उन्होंने अनेक उपनिषदों, पुराणों, गीता, संहिताओं, पूर्ववर्ती साहित्यिक रचनाओं, विविध रामायणों, राम-कथाओं आदि का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया होगा । मूलतः 'रामचरितमानस' भी राम-कथा ही है । परंतु तुलसीदास ने कथा के प्रसंगानुकूल अनेक संस्कृत काव्यों के अनुवाद करके तत् प्रसंग को अधिक गंभीरता प्रदान की है । साथ ही उन्होंने अनुवाद के विभिन्न प्रकारों का भरपूर उपयोग किया है । कहीं उन्होंने अनुवाद बड़े ही प्रयासपूर्वक किए हैं तो कहीं अनायास ही अनुवाद हो गए हैं । फिर भी तुलसीदास ने रामचरितमानस को अति समृद्ध, अधिक प्रभावशाली, अधिक विश्वस्थ, अधिक मौलिक और अधिक स्पष्ट बनाने के लिए अनुवाद का जो सहारा

लिया वह कुशलतापूर्ण सफल रहा है । अर्थात् अनुवाद के कारण ही 'रामचरितमानस' समृद्ध है और स्वयं गोस्वामी तुलसीदास समृद्ध कवि हुए । और हिन्दी साहित्य को एक पुष्ट ख़ुराक मिली ।

3.1.2 रहीम : एक अनुवादक :

रहीम का जन्म 15 दिसंबर 1556 के दिन हुआ था । अकबर बादशाह के नवरत्नों में से एक रत्न रहीम थे । ये अकबर के प्रधान सेनापति भी थे । इनके पिता का नाम बैरमख़ाँ खानखाना था, इसी उपाधि से इन्हें भी अब्दुल रहीम खानखाना के नाम से पुकारा जाता था । रहीम अकबर के बड़े कृपापात्र थे । ये बड़े अनुभवी, उदार और कलाप्रिय व्यक्ति थे । ब्रज, अवधी, संस्कृत, अरबी और फ़ारसी आदि भाषाओं पर इनका संपूर्ण अधिकार था । परोपकार और दान में ये लासानी थे । कवियों और विद्वानों का ये बड़ा मान-सम्मान करते । महाकवि गंग की एक कविता पर मुग्ध होकर इन्होंने कवि गंग को छत्तीस लाख रुपए दे दिए । अकबर की मृत्यु के पश्चात ये जहाँगीर के दरबार में भी रहे परंतु किसी कारणवश जहाँगीर ने उनकी सारी जागीर जप्त कर ली थी । उन दिनों ये चित्रकूट में रहने लगे, परंतु इनकी आर्थिक स्थिति काफ़ी दयनीय हो गई थी । इनके आखिरी दिन बड़े ही कष्ट और संकट में बीते ।[1]

चित्रकूट जाकर इन्होंने रीवाँनरेश को यह दोहा लिख भेजा था :

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश ।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश ।।

कहते हैं रीवाँनरेश ने इस दोहे पर रहीम के पास एक लाख रुपया भेजा था । अपने सुखमय जीवनकाल में उन्होंने भिखारियों को खूब दान दिया था । अंतिम दिनों में रहीम बहुत दु:खी होते थे जब भिखारी उनके पास से आकर खाली हाथ वापस चले जाते थे । भिखारियों की भीड़ एक दिन उनके द्वार पर लगी थी और उनके पास देने के लिए कुछ नहीं रहा, उस समय उन्होंने यह दोहा उन भिखारियों को लिख भेजा था :

ये रहीम दर-दर फिरे, माँगि मधुकरी खाहिं ।
यारो यारी छोड़िए, अब रहीम वे नाहिं ।।[2]

---

1. प्राचीन हिन्दी कविता, सं. गिरिराज किशोर, अंबाशंकर नागर, पृ.52
2. हिन्दी साहित्य का प्रश्नात्मक इतिहास, गौतम जयमूर्ति सिंह, पृ.98

रहीम की भावभूमि अनुभूतियों से बड़ी ही उर्वर थी । उनकी वे अनुभूतियाँ इनती तीव्र होती थीं कि उनका प्रहार सीधे ही हृदय पर होता था। भक्ति, कला, साहित्य और दर्शनशास्त्र की सूक्ष्म विवेचनाओं में तो इनकी रचनाएँ कम हैं लेकिन सामाजिक अनुभूतियों की गहराई में वे इतनी तह तक पहुँचे हैं कि उन्हें जीवनदृष्टा कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । साथ ही रहीम ने हिन्दू-धर्म ग्रंथों आदि का बड़ी गहराई से अध्ययन और मनन किया । शेषनाग के धरती धारण करने की कहानी, बावन अवतार की कहानी, भृगु के लात मारने की कहानी, गौतम-पत्नी अहिल्या के तरने आदि की कहानियों को उन्होंने अपने दोहों में खूबसूरती से जड़ा है ।[1]

रहीम अरबी, फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता तथा हिन्दी के श्रेष्ठ कवि तो थे ही परन्तु विशेषता तो यह है कि ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही वे रचनाएँ रचने लगे थे । दोहावली, नगरशोभा, बरवै नायिका-भेद, शृंगार सोरठ और मदनाष्टक इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं । इन्होंने लगभग 300 नीति संबंधी दोहों की रचना की है । शृंगार सोरठ के छह सोरठों में श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य तथा गोपी विरह का निरूपण है । 'मदनाष्टक' में मुरली के सम्मोहक प्रभाव, गोपियों की विरह वेदना तथा कृष्ण के रूप-लावण्य का चित्रण है ।[2]

'खानखाना' की उपाधि से सम्मानित अब्दुल रहीम एक उच्च कोटि के अनुवादक थे । उन्होंने अकबर की आज्ञा से अनुवादक थे । उन्होंने अकबर की आज्ञा से 'तुजुक-ए-बाबरी' का अनुवाद किया जिसका शीर्षक 'वाक़ेआत बाबरी' रखा । रहीम अरबी, फ़ारसी, हिन्दी आदि के लेखों को एक समान गति से पढ़ सकते थे साथ ही एक भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में इस प्रकार कर देते थे कि सुननेवालों को ऐसा लगता था मानों ने मूल भाषा को ही पढ़ रहे हैं ।[3]

अनुवाद में भी रहीम अपनी सृजनशक्ति का भरपूर उपयोग करते थे। उनकी रचनाओं पर हिन्दू-धार्मिक ग्रंथों का भारी प्रभाव दिखाई देता है । उन्होंने प्राचीन भारतीय वाङमय के अनेक प्रसंगों को, अनेक कथाओं आदि को, पुराणों की उक्तियों आदि को अपनी रचनाओं में पिरो दिया है । उन्होंने इन परंपरापोषित प्रसंगों के भावों एवं विचारों को ग्रहण करके उनका शब्दश:

---

1. हिन्दी साहित्य का प्रश्नात्मक इतिहास, गौतम जयमूर्ति सिंह, पृ.99
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा, डॉ. रामनिवास गुप्ता, पृ.240
3. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.93

अनुवाद तो कभी भावानुवाद किया है । मूल विचारों को और अधिक निखार मिले इस हेतु से उन्होंने भावों को सर्वथा नया रूप दिया है ।

मध्य युग के कवि, राज्य के आश्रय में काव्य का सृजन करते थे, परंतु रहीम स्वयं उर्फी शिराजी, गिलानी आदि शायरों और परसिद्ध, मंडन, गंग आदि कवियों के आश्रयदाता थे । अबुल फजल के 'आइने-अकबरी' से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है । अबुल फज़ल ने जिन कवियों और संगीतज्ञों का उल्लेख किया है, उनमें से अधिकांशतः रहीम के ही आश्रित थे । हिन्दी और फ़ारसी काव्यों के मध्य भाषिक-भेद न माननेवाले रहीम ने अपने आश्रयत्व में साहित्य को अतुलनीय प्रश्रय दिया । लौकिक विषयों तथा लौकिक भावों की अद्वितीय अनुभूतियों से सम्पन्न खानखाना सूक्ष्म सौंदर्य-बोध के धनी थे । इन्होंने अपने सृजन के माध्यम से नीति, प्रीति, भक्ति और लौकिक काव्यधारा को पुनःसंजीवन किया और सामाजिक चेतना को जागृत किया । इस कवि को सैन्य विज्ञान, राजनीति विज्ञान का गहन ज्ञान, प्रत्यक्षज्ञान तो था ही साथ-साथ वक्तृत्त्व, दर्शनशास्त्र, गणित, तर्कशास्त्र, ज्योतिष विद्या, फिकह, भाष्य आदि में भी पूर्ण योग्यता एवं गति प्राप्त थी ।[1]

भारतीय, ईरानी, मंगोल और तुर्की आदि विश्व की मुख्य संस्कृतियों के आधारभूत मूल्यों के धरातल पर रहीम का व्यक्तित्व अवलंबित था । डॉ. विजयेन्द्र 'स्नातक' का कहना है कि "रहीम के उदात्त व्यक्तित्व में हम एक सच्चे भारतीय का उज्जवल और निखरा हुआ रूप देख सकते हैं, जो जाति, धर्म और वंश के भेद-भाव को भूलकर मानवमात्र को बंधुत्व के स्तर पर आलिंगन करके मानवता का महान पुजारी है, परदुखकातर होकर जो अपना सर्वस्व अर्पित करने को सदैव उद्यत रहता है, कला और कलाकार की पूजा के लिए जो सहज भाव से झुका रहता है, जिसका काव्य कल्पना का झूठा खेल न होकर धर्म और नीति का ज्ञान कराता हुआ राग और प्रेम के शाश्वत संबंधों का परिचायक है । मर्मस्पर्शिता रहीम के काव्य का प्राण है, भारतीय संस्कृति उसका शरीर है, मानव-मानव के बीच प्रेम और सौहार्द्र के स्नेह-संबंध की स्थापना उसका उद्देश्य है ।"[2]

अब्दुल रहीम खानखाना तुर्की-फारसी, उर्दू-फारसी और संस्कृत-हिन्दी

---

1. मआसिरे रहीमी, भाग-2, पृ.551-556
2. रहीम का नीतिकाव्य, डॉ. बालकृष्ण अकिंचन, भूमिका - डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, पृ.ज

आदि अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित थे । अरबी, तुर्की, फारसी, हिन्दी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं पर अधिकार के कारण ये अपने युग में सर्वोत्तम भाषाविद् माने जाते थे । साथ ही साथ रहीम का हिन्दी की प्रमुख बोलियों - खड़ी बोली, ब्रज और अवधी पर भी असाधारण प्रभुत्त्व था । रहीम ने उर्दू भाषा में भी काव्य रचना की है । मौलाना गनी के अनुसार - रहीम ने सामान्य सैनिकों की भाषा में भी कविताएँ लिखी थीं । इन सभी भाषाओं और इन भाषाओं में किए गए अनुवादों और रचनाओं से रहीम की बहुभाषिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं ।[1]

रहीम ने 34 वर्ष की आयु में अकबर की आज्ञा से बाबर की कृति 'तुजुक-ए-बाबरी' का अनुवाद किया । 'तुजुक-ए-बाबरी' तुर्की भाषा में बाबर द्वारा लिखा गया आत्मचरित्र है । अकबर के युग में तुर्की भाषा का स्थान फारसी ने ले लिया था साथ ही यह भाषा राजभाषा भी थी । इसी कारण 'तुजुक-ए-बाबरी' का फारसी में अनुवाद करने की आवश्यकता अकबर को महसूस हुई । बाबर के 'सदर' शेख जैन वफाई खव्वाफी ने 'तुजुक-ए-बाबरी' के अनुवाद की सर्वप्रथम कोशिश भी की थी, परंतु खव्वाफी ने केवल भारत संबंधी हिस्से का ही अनुवाद किया था ।

1584 ई. में गुजरात विजय के बाद अकबर द्वारा मुगल दरबार की सर्वोत्कृष्ट उपाधि 'खानखाना' से सम्मानित अब्दुर्रहीम को 1587 तक गुजरात का सूबेदार बनाया । इसके बाद 16 मार्च 1587 को अकबर ने रहीम को लाहौर में वापस बुला लिया था । वहाँ पहुँचकर रहीम ने 3 वर्ष बिना किसी विशेष राजनीतिक कार्यकलाप के बिताए । अप्रैल 1589 में शहनशाह अकबर के साथ कश्मीर में रहकर रहीम ने 'तुजुक-ए-बाबरी' का फारसी में अनुवाद किया । 24 नवंबर 1589 को रहीम ने यह अनूदित ग्रंथ अकबर को भेंट किया ।[2] इस अनूदित ग्रंथ का नाम 'वाकेआत बाबरी' रखा गया । इस अनुवाद को देखकर अकबर भावुक हो गया था और उसने रहीम को जौनपुर का इलाका इसके इनाम के रूप में दिया ।[3]

---

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.92
2. रहीम काव्य का सामजिकशास्त्रीय अध्ययन, डॉ. मंजु शर्मा, पृ.50
3. रहीम रत्नावली : प्राक्कथन, पं. मायाशंकर याज्ञिक, पृ.5

हरीश कुमार सेठी लिखते हैं कि - "कहा जाता है कि एक रात को अरबी भाषा की हिजाजी बोली में लिखे तीन पत्र अकबर को प्राप्त हुए । बादशाह ने पत्र के मजमून से वाकिफ होने के लिए अपने दरबार के तीनों महान विशेषज्ञों अबुल-फज़ल, अबुल फतह गिलानी और रहीम को तुरंत बुलवाया और उनसे पत्रों का अनुवाद कह सुनाने को कहा । फज़ल एवं गिलानी ने पत्रों पर विहंगम दृष्टि डालकर कहा कि हम कल सुबह इनका अनुवाद आपके समक्ष रखेंगे । रहीम ने तत्पश्चात् पत्र ले लिए और पास के चिराग के पास जाकर उन पर सरसरी निगाह डाली और पुनः लौटकर मौखिक ही उन सबका अनुवाद बिना किसी खटक के अकबर को सुना दिया। इस प्रकार रहीम 'सचेष्ट अनुवादक थे' ।"[1]

'सचेष्ट' अनुवाद की व्याख्या करते हुए हरीश कुमार सेठी लिखते है कि "सचेष्ट अनुवाद में उपलब्ध कृति के कथन के अर्थ को अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयास किया जाता है और उसे अन्य भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रस्तुति के दौरान अर्थ कमोबेश यथावत रूपान्तरित हो जाता है ।"[2] इस प्रकार सचेष्ट अनुवादक के रूप में रहीम का अनुवाद स्वाभाविक, सरल, सरस और रचनात्मक होता था, वहीं साहित्य सृजन के दौरान किए गए 'अचेष्ट अनुवाद' में अनुवादक एवं सर्जक का तादात्म्य है ।

परन्तु रहीम ने कहीं भी तुलसीदास की तरह - विभिन्न पुराणों ग्रंथों आदि की सहायता से ग्रंथ की रचना की है इस प्रकार का स्पष्टीकरण नहीं दिया है । इसका कारण बताते हुए तथा रहीम का पक्ष लेते हुए हरीश कुमार सेठी लिखते हैं कि "गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसा प्रबंध काव्य लिखा जिसमें समग्र जातीय-जीवन की पूर्ण अथवा समग्र रूप में प्रस्तुति का अवकाश था जबकि रहीम ने जीवन की सच्ची अनुभूतियों को व्यंजित करनेवाली मुक्तक काव्य-शैली में भक्ति-नीति और रीति विषयक अनेक छोटे-छोटे एवं मुक्तक छंदों की रचना की ।"[3]

रहीम ने पुराणों आदि के अनेक प्रसंगों, कथाओं आदि को अपनी रचनाओं में जैसा कि जैसा रखा है । रहीम की रचनाएँ कथा-वस्तु, वस्तु-

---

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.93
2. वही, पृ.94
3. वही, पृ.95

ग्रहण, शब्द और अर्थ ग्रहण तथा प्रतिपादन के आधार पर पौराणिक ग्रंथों से प्रभावित है । अनेकों प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें रहीम ने धार्मिक और पौराणिक स्रोतों से ग्रहण किया है । हरीशकुमार सेठी ने कुछ चुने हुए प्रसंग प्रस्तुत किए हैं : "'अच्युत-चरण तरंगिणी' अर्थात् गंगा की उत्पत्ति का प्रसंग (वाल्मीकि रामायण : बालकांड, सर्ग 43, पृ.93), 'हनुमान द्वारा द्रोणाचल पर्वत को उठाने का प्रसंग', (वाल्मीकि रामायण : युद्ध कांड, सर्ग 56, पृ.320) 'अहिल्योद्धार की कथा' (वाल्मीकी रामायण : बालकांड, सर्ग 49, पृ.105), ब्रह्मपुराण (अध्याय 87, 123/100), पद्मपुराण (1/56), अध्यात्म रामायण (1/5/19-35) आदि में 'श्री राम द्वारा समुद्र पर पुल बांधने का प्रसंग' (वाल्मीकि रामायण : युद्ध कांड, सर्ग 22, पृ.1073), श्री राम द्वारा शिव-धनुष-भंग का प्रसंग (वाल्मीकि रामायण : युद्ध कांड, सर्ग 8-41, पृ.137), 'श्री राम वनवास' प्रसंग (वाल्मीकि रामायण : बालकांड, सर्ग 8-41) इसी अनुक्रम में शरणागत-वत्सल और परम दानी प्रभु राम द्वारा विभीषण को बिना माँगे ही लंका देना और निषादराज का उद्धार करने का प्रसंग भी सुविदित हैं ।"[1]

इसके अलावा रहीम की रचनाओं में 'राहु का सिर काटने' की कथा (भागवत : स्कन्ध 8, अध्याय 9), 'कृष्ण सुदामा की मित्रता की कथा' (भागवत स्कंध 10, अध्याय 8, पृ.81), 'गजेन्द्रोद्धार की कथा' (भागवत : स्कंध 8, अध्याय 2-4), 'नृसिंहावतार' की कहानी और प्रह्लाद की कथा (भागवत : स्कंध 7, अध्याय 8, पृ.10), 'गोवर्द्धन-धारण' का प्रसंग (भागवत : स्कंध 10, अध्याय 25), भृगु द्वारा भगवान विष्णु को लात मारने का प्रसंग (भागवत : स्कंध 10, अध्याय 89), 'भगवान शंभु के विष-पान' की कथा (भागवत : स्कंध 8, अध्याय 7), 'महर्षि दधीचि के अस्थि-दान' का प्रसंग (भागवत : स्कंध 6, अध्याय 1, पृ.720), विष्णुपुराण (1/17-20), मत्स्य पुराण (अध्याय 161), श्री गौरी के वंध्या होने की कथा (देवी भागवत : स्कंध 9, अध्याय 1-2) आदि विभिन्न भागवतों पर आधारित हैं । साथ ही रहीम द्वारा उद्धत 'विराट के घर भीम द्वारा रसोई बनाने' का प्रसंग (महाभारत : विराट पर्व, अध्याय 8, पृ.1861), 'पांडवों के पाँच रूप धारण करने' का प्रसंग (महाभारत : विराट पर्व, अध्याय 7-12), 'राजा नल का सारथि होने' की कथा (महाभारत : वन

---

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.95

पर्व, अध्याय 67, पृ.1136), 'द्रोपदी चीर-हरण' की कथा (महाभारत : सभा पर्व, अध्याय 68, पृ.899), 'पांडवों के वनवास' का प्रसंग (महाभारत : वन पर्व, अध्याय 1-2) आदि महाभारत से लिए हुए हैं। इसके अलावा उनकी रचनाओं में आए । 'गणेश को ऋद्धि और सिद्धि नामक दासियों के स्वामी', 'शंकर को शीश पर चंद्र धारण करनेवाला' बताने, 'शेषनाग द्वारा पृथ्वी का भार उठाने', 'भगवान विष्णु द्वारा वाराहावतार धारण कर हिरण्याक्ष को मारकर पाताल-लोक से पृथ्वी वापस लाना', 'मृग को चन्द्र के रथ का वाहक मानने' आदि से संबंधित कथाएँ भी परंपरा-पोषित हैं । गीता, महाभारत, पुराण, रामायण आदि सभी ग्रंथों के कथानकों को रहीम ने अपनी रचनाओं को अधिक विश्वस्त बनाने के लिए चुना ।[1]

हरीशकुमार सेठी का कहना है कि "रहीम ने प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अनेक प्रसंगों और कथाओं को अपने काव्यों में प्रस्तुत किया है । लेकिन वे इन परंपरा-पोषित प्रसंगों के भावों एवं प्रभावों को ही ग्रहण करते हैं, परन्तु उनका शब्दशः अनुवाद या शब्दानुवाद न करके उन प्रभावों को बिलकुल नया रूप दे देते हैं । यह उनका 'सृजनात्मक अनुवाद' है और वे अपने इस सृजनात्मक अनुवाद के माध्यम से लौकिक-ज्ञान की अनुभूति कराते हैं । इस प्रकार के सृजनात्मक अनुवाद के माध्यम से मूलतः अनुभूति भाव-प्रभाव रहीम के अपने बन जाते हैं ।"[2]

रहीम ने संस्कृत काव्यों का भी सृजन किया । उन्होंने अपने संस्कृत-ज्ञान के कारण संस्कृत साहित्य से भावों तथा प्रसंगों, कथाओं आदि की छाया ग्रहण की । अनेक भावपूर्ण छंदों का रहीम ने अनुकरण भी किया तथा संस्कृत शब्दावली का अपनी भाषा में अनुवाद भी कर दिया । हरीशकुमार सेठी ने इस बात की पुष्टि में अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जो दृष्टव्य हैं : 'प्रसंगाभरणम्' के एक श्लोक -

याचना हि पुरुषस्य महत्त्वं नाशयत्यखिलमेव तथाहि ।
सद्य एवं भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितुमिच्छन् ॥

(प्रसंगामरणम् 17)

---

1. रहीम का नीतिकाव्य, डॉ. बालकृष्ण अकिंचन, भूमिका - डॉ. विजयेन्द्र, स्नातक, पृ.च
2. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.96

रहीम ने श्लोक के पूर्ण प्रभाव को लेने के साथ-साथ शब्दावली को भी ग्रहण किया और शब्दानुवाद कर दिया :

रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायनहू को भयो, बावन आँगुर गात ।।

(रहीम रत्नावली, 19/218)

नीतिशतक के एक श्लोक -

विकृतिं नैव गच्छन्ति, संगदोषेण साधवः ।
प्रवेष्टितं महासर्पेश्चन्दनं न विषायते ।।

(नीतिशतक, 76)

का रहीम ने 'रहीम रत्नावली' में शब्दानुवाद किया है । यथा :

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग ।
चंदन विषय व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग ।।

(रहीम रत्नावली, 7/74)

संस्कृत के -

जीवन ग्रहणे नम्रा गृहीत्त्वा नरुन्नताः ।
किं कनिष्ठा किमुज्येष्ठा घटीन्त्रस्य दुर्जनाः ।।
इस श्लोक का रहीम ने भावानुवाद किया है । यथा :
रहिमन् घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ ।।

(रहीम रत्नावली 16/178)

संस्कृत में किसी कवि ने निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से यह कहा कि दुर्जन से बैर या प्रीति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह अंगारे के समान होता है - यदि गर्म हो तो जला देता है और ठंडा होता काला कर देता है ।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत
उष्णो दहति चांगारः शीतः कृष्णायते करम

(संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ 163-255)

इस श्लोक का रहीम रत्नावली में रहीम ने शब्दानुवाद किया है । यथा :

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अंगार ज्यों
तातो जारै अंग, सीरे पे कारो लगे ।।

(रहीम रत्नावली 24/271)

यहाँ रहीम ने 'दुर्जनेन सख्यं प्रीतिं' के लिए 'ओछे को सतसंग', 'न कारयेत' के लिए 'तजहु', 'उष्णो' के लिए 'तातो', 'अंगार' के लिए 'अंगार', 'शीत' के लिए 'सीरे', 'कृष्ण' के लिए 'कारो' शब्दों को रखकर शब्दानुवाद किया है । इसी तरह संस्कृत के श्लोक -

सच्छिद्र निकटे वासो न कर्तव्यः कदाचन ।
घटी विपत्ति पानीयं ताडयते झल्लरो यथा ॥

का रहीम ने रहीम रत्नावली में भावानुवाद कर दिया है । यथा :

रहिमन नीच प्रसंग ते, नित प्रतिलाभ विकार ।
नीर चोरावति सम्पुटी, मारू सहत धरिआर ॥

(रहीम रत्नावली, 18/203)

एक अन्य संस्कृत श्लोक -

को न याति वशं लोके मुखे पिण्डेन पूरितः ।
मृदंगो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम् ॥

(संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ, 163-255)

रहीम ने इस श्लोक के भाव को आत्मसात् करके प्रायः शब्दानुवाद कर दिया है । यथा :

चारा प्यारा जगत में छाला हित कर लेय ।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय ॥

(रहीम रत्नावली 5/55)

संस्कृत-नीतिकाव्य के श्लोकों का अनेक हिन्दी कवियों ने अनुवाद किया है । रहीम भी इनमें से एक हैं । संस्कृत के नीति श्लोक -

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
पचोमुचाम्भः क्वचिदस्ति पास्यं
परोपकाराय सत्तां विभूतयः ॥

का रहीम रत्नावली में रहीम ने शब्दानुवाद कर दिया है । यथा :

तरुवर फल नहिं खात हैं,
सरवर पियहि न पान ।
कहि रहीम पर काज हित,
संपत्ति संचहि सुजान ॥

(रहीम रत्नावली 8/88)

यहाँ रहीम ने प्रथम पंक्ति को उलट-सुलट करके अनुवाद किया है । संस्कृत के एक अन्य श्लोक -

उपकर्तुमं यथा स्वल्पः समर्थो न तथा महान्
प्रायः कूपस्तृषां हन्ति, सततं न तु वारिधिः ।

(संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ, 168-672)

का रहीम ने भावानुवाद किया है :

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ।।

(रहीम रत्नावली 10/105)

संस्कृत के अनेक श्लोकों का रहीम ने अनुवाद किया है । कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं :

संस्कृत :

भद्रं भद्रं कृतं मौनं कोकिलैर्जदलदागमे ।
वक्तारो दर्दुरा यत्र, तत्र मौनं हि शोभते ।।

(सु.र.मा. 235-118)

रहीम रत्नावली :

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन ।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन ।।

(रहीम रत्नावली 11/117)

यहाँ रहीम ने शब्दानुवाद कर दिया है ।

संस्कृत :

चिता दहति निर्जीव चिन्ता जीवं दहत्यहो ।
बिन्दुनैबाधिका चिंता, चितात्यल्या हि भूतले ।।

(सु.र.मा. 394-670)

रहिमन कठिन चितान ते चिन्ता को चित चेत ।
चिता दहति निर्गीव को चिंता जीव समेत ।।

(रहीम रत्नावली 15/170)

यहाँ रहीम ने प्रथम पंक्ति का शब्दानुवाद किया है और उसे अपनी दूसरी पंक्ति के रूप में रखा है । शब्दशः अनुवाद किया है यथा :

"चिता दहति निर्जीव, चिंता जीवं दहत्यहो" का "चिता दहति

निर्जीव को, चिंता जीव समेत" जबकि संस्कृत की दूसरी पंक्ति का अपनी पहली पंक्ति में उन्होंने भावानुवाद किया है ।

संस्कृत :

काक: कृष्ण: पिक: कृष्ण को भेद: पिक काकयो: ।
वसन्त समये प्राप्ते काक: काक: पिक: पिक: ।।

(सु.र.मा. 225-120)

इस श्लोक का रहीम रत्नावली में रहीम ने भावानुवाद किया है । यथा :

दोनों रहिमन एक से, जौ लौ बोलत नाहिं ।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माँहिं ।।

(रहीम रत्नावली 9/101)

यहाँ रहीम ने प्रथम पंक्ति के शब्दों को लेकर भावानुवाद किया है :

"दोनों रहिमन एक सै" जबकि दूसरी पंक्ति का उन्होंने शब्दानुवाद ही कर दिया है ।

संस्कृत :

वर्जनीयो मतिमता दुर्जन: सख्यवैरयो: ।
श्वान भवत्यकाराय लिहन्नपि दशन्नपि ।।

(शारंगधर पद्धति, 367)

रहीम रत्नावली में रहीम ने शब्दानुवाद कर दिया है :

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति ।
काटे चाटे स्वान के, दोउ भांति विपरीत ।।

(रहीम रत्नावली)

रहीम ने अपनी रचनाओं में संस्कृत-साहित्य के अनेक लौकिक नीति-वचनों का शब्दानुवाद किया है । उन्होंने भाव-अर्थ-विचार को तो ग्रहण किया ही है परन्तु कहीं-कहीं तो शब्दक्रम भी वही रखा है जो मूल में है । इतना होने पर भी इनकी विशिष्ट दृष्टि एवं मौलिक विचार-दिग्दर्शन में आँच नहीं आने पाई है ।[1]

रहीम की रचनाओं में छायानुवाद भी झलकता है । जैसे, भगवान के प्रति असीम आस्था व्यक्त करते हुए एक संस्कृत कवि ने निम्नलिखित श्लोक में कहा है कि जिस जीव की भगवान रक्षा करते हैं वह अरक्षित होने पर भी

2. रहीम साहित्य की भूमिका, डॉ. बमबम सिंह 'नीलकमल', पृ.368

सुरक्षित है जबकि जिसे भगवान मारना चाहते हैं वह सुरक्षित होते हुए भी मर जाता है । अर्थात् भगवान द्वारा रक्षित व्यक्ति अनाथ होते हुए भी कठिन वन में भी सुरक्षित जीता है और भगवान जिसके प्रति प्रतिकूल हो जाते हैं वह रक्षा का प्रयत्न करते हुए भी नष्ट हो जाता है ।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि वने, विसर्जितः कृतप्रयतनोऽपि विनश्यति ॥

(शारंगधर पद्धति 446)

रहीम रत्नावली में रहीम ने एक दोहे में इसी भाव को प्रस्तुत किया है । उनके निम्नलिखित दोहे में उपरोक्त श्लोक की सुस्पष्ट छाया है । यथा :

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥

(रहीम रत्नावली 19/210)

इस दोहे में रहीम ने कहा है कि भगवान के प्रतिकूल होने पर व्याधियाँ मनुष्य का साथ नहीं छोड़तीं फिर चाहे भले ही वह उनके निदान के लिए बहु औषधियाँ क्यों न ले ले, और अनाथों के नाथ हरि के अनुकूल होने पर पशु-पक्षी घने वन में भी नीरोग ही बने रहते हैं ।

हितोपदेश के निम्नलिखित श्लोक में कहा है कि यद्यपि स्वर्ण-मृग न होने की बात सब जानते हैं, परंतु फिर भी राम जैसा बुद्धिमान महापुरूष भी स्वर्ण मृग को देखने पर लालायित हो गया इसी से सिद्ध होता है कि विपत्ति काल में बुद्धि मलिन हो जाती है :

असंभवं हेम मृगस्य जन्म, तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकालेधियोऽपि पुंसां मलिनी भवन्ति ॥

(हितोपदेश, पृ.1/24)

रहीम रत्नावली में रहीम ने उपरोक्त श्लोक में अंतर्निहित भाव को ग्रहण करके उसमें मृग के पीछे जाने की बात के साथ रावण द्वारा सीता-हरण की बात रचनात्मक ढंग से जोड़कर निम्नलिखित दोहे की रचना की है ।

राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपने हाथ ॥

(रहीम रत्नावली 21/237)

इस दोहे में हितोपदेश के संस्कृत श्लोक की छाया स्पष्टरूप से दिखाई देती है ।[1]

रहीम ने शब्दानुवाद किया, भावानुवाद किगा, छायानुवाद किया, परंतु रहीम इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए हैं उन्होंने कहीं-कहीं कुछ घटा-बढ़ाकर रूपान्तरण भी किया है । उन्होंने इस तरह मूल-विषयवस्तु में परिवर्तन-परिवर्द्धन भी किया है । संस्कृत रचनाकारों की रचनाओं के भाव ग्रहण करके उन्हें यथावत प्रस्तुत करने के स्थान पर उनमें अपनी ओर से आवश्यकतानुसार कुछ घटा दिया है तो कभी कुछ जोड़ दिया है । साथ ही उन्होंने "संस्कृत, फारसी तथा हिन्दी के अनेक कवियों की रचनाओं से भाव ग्रहण करके कुछ को मात्र रूपान्तरित कर अपने काव्य में स्थान दे दिया और अधिकांश को अपनी स्निग्ध अनुभूति एवं गहरी भावुकता से अनुरंजित कर अधिकाधिक मार्मिक और संवेद्य बना दिया । यह इनकी संवेदनशीलता, काव्य-प्रभुता और सूक्ष्मदर्शिता का ही परिणाम है ।"[2] इसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए हरीशकुमार सेठी कहते हैं कि रहीम ने भावानुवाद भी इतनी कुशलता के साथ किया है कि उसमें रहीम का सृजनकार का व्यक्तित्त्व और अधिक निखरा है । यथा:

समुद्र के बारे में एक संस्कृत अन्योक्ति सुविदित है जिसमें उत्ताल तरंगों वाले सागर को धिक्कारा गया है क्योंकि उसके किनारे पहुँचकर भी प्यासा अपनी प्यास नहीं बुझा पाता और समुद्र से कुए का पता में पूछता है -

हेलोल्लसित कल्लोल ! धिक्ते सागर ! गर्जितम्
तव तीरे तृषाक्रांतः पांथः पृच्छति कूपिकाम् ॥

(संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ 203)

रहीम रत्नावली में रहीम ने शब्दानुवाद न करके भावानुवाद किया है जिसमें सृजनात्मकता और मार्मिकता इतनी सुंदर हैं कि मूल संस्कृत श्लोक में भी नहीं है यथा:

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पिअत अधाय
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय ॥

(रहीम रत्नावली 10/105)

---

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.102
2. रहीम साहित्य की भूमिका, डॉ. बमबमसिंह 'नीलकमल', पृ.369

इसी तरह हनुमन्नाटक के एक श्लोक में दुष्टों की संगति को अनर्थ का हेतु बताया है और उसके दुष्परिणाम भी बताए हैं । यह सीता का हरण करनेवाले रावण के कारण समुद्र को भी सेतु से बंधना पड़ा - इसके समान है । इस बात को रहीम ने बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ संस्कृत से हिन्दी में उतारा है । दोनों रचनाएँ निम्नानुसार हैं :

हनुमन्नाटक :

दुर्वुत्तसंगतिरनर्थ परंपरायाः हेतु
सतां भवति किं वचनीयमत्र ।
लंकेश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं
आप्नोति बन्धनमसौ किल सिन्धुराजः ॥

रहीम :

बसि कुसंग चाहत कुशल, चह रही रहीम जिय सोस ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥

(रहीम रत्नावली 11/127)

हनुमन्नाटक के एक श्लोक में विधाता के क्रुद्ध हो जाने पर मित्र के शत्रु हो जाने, आपत्तिकाल में स्वजनों के भी बदल जाने की बात को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जो दीपक हवा के झोंके से बचाने के लिए सुंदरी के आँचल से सुरक्षित था, वह दीपक उसी आँचल द्वारा बुझा दिया गया । इसी बात को रहीम ने निम्नलिखित दोहों में कह दी है ।

हनुमन्नाटक :

मेनांचलेन सरसीरुहलोचनाया स्त्रातः प्रभूतपवनाद्रुपदये प्रदीपः ।
तेनैव सोऽस्त समयेऽस्तमयं विनीतः
क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम् ॥

रहीम :

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट-ओट
समय परे ते होत है वाही पर की चोट ॥

(रहीमरत्नावली 8/80)

जिहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात ।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥

(रहीम रत्नावली 6/62)

भर्तृहरि और चाणक्य के नीतिकाव्यों से अति प्रभावित रहीम ने अनेकों नीतिकाव्यों का खुलकर अनुवाद किया है । यथा:

येषां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्म: ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता:
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।
(चाणक्य नीति 10-7, नीतिशतक 13)

इस श्लोक का रहीम रत्नावली में रहीम ने कुछ छोड़कर कुछ जोड़कर अनुवाद कर डाला है । यथा:

रहीमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरमजस दान
भू पर जनम वृथा धरै, पशु बिन पुंछ विषान ।
(रहीम रत्नावली, 21/232)

यहाँ रहीम ने अपने दोहे के अंतिम चरण में 'पशु बिन पुंछ विषान' का प्रयोग किया है जो कि उपरोक्त संस्कृत श्लोक में नहीं है बल्कि नीतिशतक के ही एक अन्य श्लोकार्द्ध का शब्दश: अनुवाद किया है । यथा:
संस्कृत

'साहित्य, संगीत, कला, विहीन: साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन:'
रहीम: 'पसु बिन पुंछ विषान' ।
इसके अलावा चाणक्य के नीति-सूत्र
न दुर्जनैस्स संसर्ग: कर्तव्य: ।
(चाणक्य सूत्र 215)
शोण्ऽहस्तगतं पयोप्यवमन्येत ।
(चाणक्य सूत्र 216)

इनमें दुर्जनों का प्रभाव वर्णित है । रहीम ने रहीम रत्नावली में इन सूत्रों को थोड़ा-बहुत परिवर्तित करके अपने दोहे में जड़ दिया है । यथा:

रहीमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझै सब ताहि ।।
(रहीम रत्नावली 18/202)

संस्कृत के नीतिकाव्य में किसी कवि ने निम्नलिखित श्लोक में कहा है कि नदी, नाखूनवाले प्राणी, सींगवाले पशु, शस्त्रधारी और राजकुल की स्त्रियों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए । यथा:

नदीनां नखिनां श्रृंगिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासों नैव कर्त्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

रहीम रत्नावली में रहीम ने इस श्लोक से भाव लेकर उसमें परिवर्तन करके लिखा है कि साँप, घोड़ा, नारी, राजा, नीच जाति के मनुष्य तथा शस्त्रों को सँभालकर रखने और उनसे सतर्क रहना चाहिए क्योंकि ये 'उल्टे ही वार करने से चूकते' नहीं हैं । यथा:

उरभ तुरंग, नारी, नृपति, नीचजाति, हथिआर ।
रहीमन उन्हें सँभारिए, पलट लगै न बार ॥

(रहीम रत्नावली 2/14)

संस्कृत काव्य के निम्नलिखित श्लोक में कहा गया है कि सज्जन व्यक्ति भले ही धनहीन हो परंतु याचना तो उसी से करनी चाहिए । इस बात को नदी के सूखने पर कुआ खोदने का उदाहरण देकर समझाया गया है । यथा:

साधुरेवार्थियिर्यात्य: क्षीण वित्तोपि सर्वदा ।
शुष्कोपि हि नदीमार्ग: खन्यते सलिलार्थिभि: ॥

रहीम ने भी नदी के सूखने पर कुआँ खोदने की बात का उदाहरण देकर दानी के बारे में कहा है कि दरिद्र होने की स्थिति में उसके 'दान-भाव' संबंधी योग की जाँच हो जाती है -

रहीमन दानि दरिद्रतर, तऊ जांजिबे जोग
ज्यों सरितन सूखा परे, कुंआ खनावत लोग ॥

(रहीम रत्नावली 17/195)

रहीम के इस दोहे में उक्त संस्कृत श्लोक कीं सुस्पष्ट छाया दिखाई देती है ।

चाणक्य ने निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से निर्धनता की भर्त्सना की है और अपने बंधुबांधवों के बीच निर्धन-यापन करने की अपेक्षा वृक्षों और व्याघ्र तथा हाथियों आदि से भरे हुए वन में पत्तों की शैया पर सोकर, वल्कलों के वस्त्र धारण करके पके हुए फलों तथा जलादि का भोजन करके जीवित रहना उचित कहा है -

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्र सेवितं, द्रुमालयं पक्वफलाम्बुसेवनम ।
तृणेषु शय्याशतजीर्णवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम ॥

(चाणक्यनीति, 10-12)

इस श्लोक की छाया लेकर रहीम ने निम्नलिखित दोहे के रूप में अनुवाद किया है :

वरु रहीम कानन भलो, वास करिय फल भोग ।
बन्धुमध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ।।

(रहीम रत्नावली 22/245)

एक अन्य संस्कृत श्लोक में आत्मश्लाघा की निंदा की है - जिस तरह स्त्री को स्वयं अपने कुच-मर्दन करने से आनन्द नहीं होता उसी तरह आत्मश्लाघा में भी आनंद नहीं होता । संस्कृत के इस निम्नलिखित श्लोक का भाव लेकर अनुवादक रहीम ने अनुवाद कर दिया है :

संस्कृत :

न सौख्य सौभाग्यकरागुणा नृणां,
स्वयं गृहीताः सुदृशं कुचा इव ।
परै गृहीत द्वितयं वितन्वते
न तेन गृह्वान्ति निजं गुणां बुधाः ।।

रहीम :

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु ।
ज्यों तिय कुच आपन गहे, आप बड़ाई आपु ।।

(रहीम रत्नावली 14/156)

यहाँ रहीम ने संस्कृत से भाव ग्रहण किया और उसे अपने शब्दों में व्यक्त कर दिया है ।

संस्कृत भाषा के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का एक श्लोक -

हारो नापोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा ।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वता सरितो द्रुमाः ।।

अर्थात् "संयोगावस्था में मैं (श्रीराम) अपने गले में हार इस डर के कारण नहीं पहनता था कि उससे मेरे (श्रीराम के) और मेरी पत्नी (सीता) के मध्य कहीं हार का अंतराल न आ जाए, किंतु अब हम दोनों (श्रीराम और सीता) के बीच पर्वत, नदियाँ और वृक्ष आ गए हैं ।" इसी भाव को लेकर रहीम ने अनुवाद कर्म किया है यथा:

रहिमन इक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन पडे पहार ।।

(रहीम रत्नावली 15/167)

सूर्य अपने उदयकाल में जिस तरह का लाल होता है वैसा ही लाल वह अस्त होने के समय भी होता है, दोनों समय में एक समान बना रहता है । इसी प्रकार नहान व्यक्ति अपनी समृद्धि के समय तथा विपत्ति के समय एक समान बना रहता है - इस बात को पंचतंत्र के निम्नलिखित श्लोक में कहा गया है -

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा ।
सम्पतौ च विपतौ च महतामेकरूपता ।।

(पंचतंत्र 2-6)

रहीम ने रहीम रत्नावली में मूल संस्कृत के उक्त श्लोक के सूर्य की जगह चंद्र की उपमा देकर अनुवाद कार्य किया है यथा:

यों रहीम सुख दुःख सहत, बड़े लोग सह भांति ।
उवत चंद जेहिं भांति सो, अथवत ताही भांति ।।

(रहीम रत्नावली 14/158)

संस्कृत के अलावा पालि-प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाओं का भी रहीम ने बखूबी से अनुवाद किया है । जैसे जातक कथाओं में यातना के संबंध में निम्नलिखित दोहा है :

याचन सेदनं आहु पंचालानं रथै सभ
यो योचनं पच्चक्खाति तमाहु पटि रोदनं ।।

(जातक 3)

रहीम ने उक्त दोहे का शब्दानुवाद ही कर दिया है । मूल पालि की शब्दावली का उपयोग करके रहीम ने वही भाव कायम रखा है :

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुं मांगन जाहिं
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ।।

(रहीम रत्नावली 21/234)

रहीम पर प्राकृत भाषा में रचित नीतिपरक दोहों का भी भारी प्रभाव रहा है । गाथा सप्तशती की नीतिगाथा में स्वाति जल के विभिन्न रूपों का उल्लेख करते हुए एक सुभाषित -

सा जाई तं च जलं पत्त विसेसण अंतरं गरूअं ।
अहि मुह पडिअ गरलं, सिप्पिउहै मुत्तियं होई ।।

(प्राकृत सुभाषित संग्रह, वी.एन.शाह, पृ.462)

का रहीम ने भावानुवाद किया है । यथा :

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुण तीन ।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ॥

(रहीम रत्नावली 3/22)

मुकता कर करपूर कर, चातक-जीवन जोय ।
ये तो बड़ो रहीम जल, ब्याल-बदन विष होय ॥

(रहीम रत्नावली 13/147)

प्राकृत भाषा की एक उक्ति में लिखा है कि प्रिय-वियुक्त गौरी निश्चिंत नहीं बैठ सकती है । यथा :

एत्तेहे तेत्तहे बरि धरि लच्छि बिसुँठुल धाई ।
पिअ पवमट्ठ ब गोरड़ी निच्चल कहिं वि न ढाई ॥

इस उक्ति में प्रिय-वियुक्त गौरी-लक्ष्मीजी के लिए कहा गया है । रहीम ने इस उक्ति का भावानुवाद किया है :

कमला धिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥

(रहीम रत्नावली 3/23)

रहीम ने फारसी रचनाओं से भी भावग्रहण करके अपनी रचनाएँ की हैं । अमीर खुसरो ने फारसी रचना द्वारा कहा है कि पर्दे में छिपे हुए भेद को आँसू बहार निकाल देते हैं क्योंकि मेहमान को बाहर निकाल देने में शिकायत होती ही है -

अश्कम बेरूं भी अफगंद राज दरम पर्दह: रा ।
आर शिकायत हा बूबद मेहमान बेरूं कर्द: रा ॥

अमीर खुसरो के इसी भाव को लेकर रहीम ने निम्नलिखित दोहे की रचना कर दी :

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दु:ख प्रगट करेइ ।
जाहिर निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ ॥

(रहीम रत्नावली 15/165)

शेख सादी का खुशामद के संबंध में एक शेर बहुत ही प्रसिद्ध है कि अगर बादशाह दिन को रात कहे तो खुशामद करनेवाले को यही कहना चाहिए कि देखो वह चन्द्रमा है वह रोहिणी है -

अगर शहरोज रा गोयद शब अस्त हूँ ।

वपायद गुफ़्त ईनक माहो परवीं ।।

रहीम के निम्नलिखित दोहे में इस शेर का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है ।

रहीमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाव ।

जो बासर को निसि कहै तो कचपची दिखाव ।।

(रहीम रत्नावली 10/188)

अर्थात् राजा के राज्य में रहो तो राजा की हाँ में हाँ मिलाते रहो यदि वह दिन को रात कहे तो उसे तारों का समूह दिखाओ ।[1]

रहीम की रचनाओं पर संस्कृत, पालि, प्राकृत, फ़ारसी आदि के अलावा उनसे पहले के कवियों का भी भारी प्रभाव सुस्पष्ट दिखाई देता है । हरीशकुमार सेठी का कहना है कि -

"रहीम पर कबीर, सूरदास, तुलसीदास, व्यासजी, रसखान आदि पूर्ववर्ती समकालीन कवियों का भी प्रभाव रहा है ।"[2] अपनी बात की पुष्टि में हरीशकुमार सेठी ने निम्नलिखित अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । यथा :

कबीर : जालौ इहै बड़ापना, ज्यूं सरलै पेड़ खजूरि
पंथी छांह न बीसवै, फल लागौं ते दूरि ।।

रहीम : होय न जाकी छांह ढिग, फल रहीम अति दूर ।
बढ़िहू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर ।।

कबीर : हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराइ ।
बूंद समानी समुद्र में, सो कित हेरी जाइ ।।

रहीम : बिन्दु भी सिंधु समान, को अचरज कासों कहै ।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आपतें ।।

(रहीम रत्नावली 24/277)

कबीर : मारी मरे कुसंग की, केरा काढै बेर ।
वह हाले वह चीरई, साकत संग निबेर ।।

---

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.103-109
2. वही, पृ.109

रहीम : कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग ।

वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ।।

(रहीम रत्नावली 3/33)

इस तरह रहीम ने अपने पूर्ववर्ती कवि सूरदास से भी प्रेरणा ली है । सूरदास और रहीम दोनों ही कृष्ण भक्त थे, अतः सूरदास ने श्रीकृष्ण के सौंदर्य की जिन छबियों को अंकित किया है रहीम ने भी वैसी ही छबियाँ अपनी रचनाओं में रखी हैं ।

'रहीम रत्नावली' में 'फुटकर छंद तथा पद' में समाविष्ट पदों के अलावा 'दोहावली' के दोहों का अवलोकन करने पर मालूम चलता है कि रहीम ने अनेक दोहे सूरदास की रचनाओं से लिए है । यथा :

सूरदास :

सीप यो मुक्ता भयो, कदली भयो कपूर ।

अहिफन गयो तो विष भयो, संगत को फल सूर ।।

रहीम :

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुण तीन ।

जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन ।।

(रहीम रत्नावली 3/22)

मुक्ता कर करपूर कर चातक जीवन जोय ।

येतो बड़ो रहीम जल, ब्याल-बदन विष होय ।।

(रहीम रत्नावली 13/147)

सूरदास :

यों भूली ज्यों चोर भरे घर, चोरी निधि न लई ।

बदलत भोर भयों पछतानी, करते छाड़ि दई ।।

रहीम :

करमहीन रहिमन लखो, धँस्यो बड़े घर भोर ।

चिंतन ही बड़ लाभ के, जागत ह्वै गो भोर ।।

(रहीम रत्नावली 3/26)

सूरदास :

मानत नहीं लोक-मर्यादा हरि के रंग मजी ।

सूरश्याम को मिली चूने हरदी ज्यों संग रजी ।।

रहीम :

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रंग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ।।
(रहीम रत्नावली 18/208)

अपने समकालीन कवि गोस्वामी तुलसीदास का भी रहीम पर भारी प्रभाव रहा था । दोनों एक दूसरे के परम मित्र भी थे तथा दोनों के बीच पत्र-व्यवहार भी होता रहता था ।[1] बरवै छन्द में रचना कार्य करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास को रहीम ने ही कहा था । और इसी कारण तुलसीदास ने बरवै रामायण की रचना की । दोनों की रचनाओं पर परस्पर प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे जाता है । जैसे -

तुलसीदास :

बिन प्रपंच छल भीख भलि लहिय न हिय कलेस
वामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ।।

तुलसीदास के इस दोहे का भाव लेकर रहीम के निम्नलिखित दोहा रचा ।

परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस ।
बामन ह्वै बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ।।
(रहीम रत्नावली 10/114)

तुलसीदास :

आपन छोड़ो साथ जब, तादिन हितू न कोय ।
तुलसी अंबुज अंबु बिन, तरनि तासु रिपु होय ।।

रहीम :

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय ।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिन हित होय ।।
(रहीम रत्नावली 6/58)

तुलसीदास :

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन ।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ?

रहीम :

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन ?
(रहीम, रत्नावली 11/117)

1, The Mughal Empire, Dr. R. L. Srivastava, P.248

उपरोक्त उदाहरणों में रहीम और तुलसीदास की रचनाओं में भाव-साम्य तो है ही शब्दों का क्रम भी लगभग वही रहा है । रहीम के अनुवाद कार्य का एक विशिष्ट पहलू यह भी है कि उन्होंने स्वयं अपनी ही रचनाओं का भी अनुवाद किया है । ऐसा अनुवाद बहुत ही अल्प प्रमाण में दिखाई देता है । रहीम ने विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेव जी के मस्तक पर मालती-माला के समान सुशोभित होनेवाली गंगा को संबोधित करते हुए एक संस्कृत श्लोक में कहा है कि - हे गंगे ! मुझे ताने के समय विष्णु न बनाकर महादेव जी बनाना ताकि मैं तुम्हें अपने सिर पर धारण कर सकूँ । यथा :

अच्युतचरण तरंगिनी शशिशेखर मौलि मालती माले ।
मम तनुवितरण समये हरता देवा न में हरिता ॥

(रहीम काव्य-श्लोक 73/9)

रहीम ने अपने ही लिखे हुए संस्कृत श्लोक का भी अनुवाद किया । यथा :

अच्युतचरन तरंगिनी, शिव-सिर मालती-माल ।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल ॥

(रहीम रत्नावली 1/1)

रहीम द्वारा रचित यह दोहा मौलिक सृजन न होकर संस्कृत श्लोक का शब्दानुवाद है ।[1]

इस प्रकार उपरोक्त उदाहरणों से रहीम का अनुवाद कर्म सुस्पष्ट दिखाई देता है । बहुभाषाज्ञ रहीम का विभिन्न पुराणों, संस्कृत काव्यों आदि का गहन अध्ययन तो था ही साथ-साथ उनके मौलिक विचार भी उत्कृष्ट थे । 'तुजुक-ए-बाबरी' का अनुवाद करके वे एक उच्च कोटि के अनुवादक भी कहलाए । अपनी रचनाओं में रहीम अन्य कवियों के भाव पिरोकर अपनी भाषा में ऐसा चमत्कार पैदा करते कि अनूदित रचना मौलिक ही प्रतीत होती और अत्यंत सराहनीय हो जाती । रहीम ने भक्ति, रीति, नीति श्रृंगारादि की रचनाओं के परिशीलन के फलस्वरूप भावों आदि को नया रूप भी दिया है । उन्होंने हिन्दी कवियों की अपेक्षा अपने पूर्ववर्ती संस्कृत कवियों से अधिक भाव-प्रभाव ग्रहण किया और अनुवादपरक सृजनात्मक रचनाएँ रचीं । किसी

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में हरीशकुमार शेठी का लेख 'अब्दुर्रहीम खानखाना', पृ.100-113

भी विचार को अधिकाधिक प्रभावपूर्ण भाषा में अपने ही ढंग से प्रस्तुत करना ही मौलिकता है । इसी कारण रहीम की अनूदित रचनाएँ भी मौलिक ही प्रतीत होती हैं । उन्होंने संस्कृत, फारसी, हिन्दी आदि के पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से जो भाव ग्रहण किए उन भावों की अभिव्यंजनाओं को नया रूप देकर उनमें मौलिकता भर दी है । रहीम किसी भी भाव को यथावत रखकर शैली में या कहीं भी थोड़ा-सा परिवर्तन करके उस भाव में नावीन्य ला देने में अति कुशल थे । फारसी के अलावा रहीम की रचनाओं में भारतीय धर्म-ग्रंथों के ज्ञान का शब्दानुवाद, भावानुवाद, छायानुवाद आदि को सुस्पष्ट देखा जा सकता है ।

रहीम अपनी सृजन शक्ति को कायम बनाए रखने के लिए इस तरह अनुवाद करते कि अनुवाद बिलकुल सादगीपूर्ण हो, सुस्पष्ट अर्थ निहित हो, और मूल की अपेक्षा कुछ नावीन्य सभर हो । रहीम 'सचेष्ट' अनुवादक तो थे ही परंतु उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं 'अचेष्ट' अनुवाद भी हुआ है । इसका कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने संस्कृत, अपभ्रंश, फारसी आदि भाषाओं के साहित्य का बड़ी ही गंभीरतापूर्वक, गहराई से अध्ययन किया था। जीवन की शाश्वत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए स्रोत ग्रंथों के भावों को लेकर उनमें यत्किंचित परिवर्तन - परिवर्द्धन करके रहीम ने जो रचनाएँ रची हैं उनमें से कुछ अनुवाद होते हुए भी मौलिक कही जाती हैं । फिर भी वे अनुवाद, मौलिक सृजन ही हैं । राजदरबार और जनसामान्य के बीच भेद भावों को नष्ट करने के लिए तथा साथ ही समाज के सांस्कृतिक अध:पतन को रोकने हेतु रहीम ने अनुवाद कर्म किया है जो उनके ज्ञान की उच्चतम शिखर है । रहीम ने अपने इस ज्ञान को विभिन्न भाषाओं में से हिन्दी भाषा में प्रस्थापित किया है । इससे हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नई दिशा मिली जो विकासक्रम के लिए नींव की ईंट समान है ।

3.1.3 मल्ह कवि : एक अनुवादक

मल्ह कवि का जन्म सन् 1544 ई. में हुआ था । इनका मूल नाम मथुरादास था । इन्हें देवीदास के नाम से भी जाना जाता था । इनके गुरु का नाम खेमचन्द था । मल्ह कवि ने अपने गुरु के आशीर्वाद से ही 'प्रबोधचन्द्रोदय' का हिन्दी में अनुवाद किया । अपने इस अनूदित ग्रंथ की

शुरूआत में ही मल्ह लिखते हैं कि -

जब बर खेमचन्द गुरु दीयो
तब आरंभ ग्रंथ को कीयो ।

(प्र. च. अनु. पृष्ठ 1, 16)

मल्ह कवि ने यह अनुवाद 'कुँवरसेन जी' के अध्ययन के लिए किया था । 'कुँवरसेन जी' कौन थे इसका उल्लेख अनुवाद में उन्होंने कहीं नहीं किया । केवल इतना ही उल्लेख है कि कुँवरसेन के अध्ययन के लिए ही इसकी रचना (अनुवाद) की गई है -

इतिश्री मल्हकवि विरचिते प्रबोधचन्दोदय नाटके षष्टमों अंकः समाप्तः ॥
श्री कुँवरसेन जी पठनार्थ ॥

डॉ. सरोज अग्रवाल ने मल्ह कवि द्वारा किए गए 'प्रबोधचन्द्रोदय' के हिन्दी अनुवाद का सूक्ष्मता से अध्ययन करते हुए लिखा है कि - "मल्ह कवि द्वारा किए गए 'प्रबोधचन्द्रोदय' के हिन्दी अनुवाद में यद्यपि मूल का साहित्यिक सौंदर्य, नाट्य-शैली की अभिनेयता का सफल निर्वाह, सूक्ष्म दार्शनिक सिद्धान्तों की स्पष्ट समीक्षा नहीं है किंतु फिर भी मूल की कथा के प्रसंगों की मल्ह कवि ने अपने अनुवाद में जैसी अभिव्यक्ति की है उस दृष्टि से इसे भावानुवाद अवश्य कहा जा सकता है ।"[1]

अपने एक अध्ययन में डॉ. सरोज अग्रवाल ने संस्कृत वाङ्मय में अपनी रूपक-शैली की विशेषता के कारण सुप्रसिद्ध नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' के मल्ह कवि द्वारा किए गए हिन्दी अनुवाद पर सोदाहरण प्रकाश डाला है । जिसमें से अनुवाद के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

संस्कृत : रति : **"आर्यपुत्र, श्रुतं मया युष्माकं विवेक**
शमदम प्रमृतीनां चैकमत्पत्तिस्थानमिति ।"

काम - **"आः प्रिये, किमुच्यत एकमुत्पत्तिस्थानमिति ।**
ननुजनक एवास्माकमभिन्नः । तथाहि -
संभूतः प्रथममहेश्वरस्य सान्मायायां मन
इति विश्रुतस्तनूजः । त्रैलोक्यं सकलमिदं
विसृज्य भूयस्तेनाथो जनितमिदंकुलद्वयं नः ॥ 17 ॥

---

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में डॉ. सरोज अग्रवाल का लेख 'मल्ह कवि', पृ.132

तस्य च प्रवृत्तनिवृत्ती द्वे धर्मपत्नयौ
तयोः प्रवृत्यां समुत्पन्न महामोहप्रधानमेकं
कुलम् । निवृत्यां च द्वितीय विवेकप्रधानमिति ।"

रति - "आर्यपुत्र, यद्येयं तार्त्कि निमित्तं
पुष्माकं सोदराणामपि परस्परम्
एतादृशं वैरम् ।"

मल्ह कवि कृत अनुवाद -

रत्योवाच - एकै घर के तुम सब भाई ।
क्यों तुम माझ बैरु उपजाई ।।
बुरौं कौन हौं बिनऊ तोसो,
स्वामी व्यौरो कहियै मोसों ।।

कामोवाच - अच्युत अविनासी है कोई,
परमात्मा पिता है सोई ।
ताकै पुत्र भयो मन भारी,
तिन जु विवाही है द्वै नारी ।
प्रवर्त एक सबै जग भावै,
निरवर्ती निरवर्त कहावै ।
हम पुत्र प्रवर्ति ने जाये
वै निरवर्ति के ऊदर ऊपाये । (66)
वैं पापी पितह मारयौ चाहै,
हम सुख ताकै भोगनि बाहै ।
सब बैरी आइ औतरे पेटा,
पिता न करई उन सो भेटा । (67)

माता श्रद्धा के वियोग में पुत्री शांति की व्यथा की अभिव्यक्ति करती हुई मूल नाटक की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

शांति - (सास्रम) मातः मातः क्वासि । देहि में प्रियदर्शनम् ।
.... मामनालोक्य न स्नाति न भुङ्क्ते न पिबत्यपः ।
न मया सहिता श्रद्धा मुहूर्तमपि जीवति । (2)
तद्विना श्रद्धया मुहूर्तमपि शान्तेजीवितं विडम्बनमेव ।...

अर्थात् - शांति -(रोकर) माँ कहाँ हो मुझे दर्शन दो । ...जो श्रद्धा

बिना मुझे देखे न नहाती है, न खाती है, न पानी पीती है, वह मुझसे बिछुडकर क्षणभर भी नहीं जी सकती है ।(2) इसलिए श्रद्धा के बिना क्षणभर के लिए भी शांति का ढोना विडम्बना है ।...

मल्ह कवि कृत अनुवाद :

सांति रौवै माकै तांई, सरधा मोहि मिलाइ गुसांई
तू मो बिना न न्हाती खाती, अब हौं क्यों छाडी बिललाती ।
जीवत नाहीं मेरे जाना, या विवेक त्यागौ गी प्राना । (1)

उपरोक्त उदाहरणों से मल्ह कवि की अनुवाद कला के दर्शन होते हैं। मल्ह कवि ने 'प्रबोध चंदोदय' का सर्व प्रथम अनुवाद किया था । जो अपने आप में भावानुवाद की श्रेणी में स्थापित हुआ है ।

---

1. अनुवाद अंक-96-97, जुलाई,-दिसंबर 1998 में प्रकाशित डॉ. सरोज अग्रवाल का लेख 'मल्ह कवि', पृ.133-134